International Journal of Multidisciplinary Research and Growth Evaluation.

महाभारत में राजधर्म की संकल्पना और उसका प्रशासनिक स्वरूप

डॉ. प्रतीक मिश्रा
Ex-Research Scholar, BHU, Uttar Pradesh, India

* Corresponding Author: **डॉ. प्रतीक मिश्रा**

Article Info

ISSN (Online): 2582-7138
Impact Factor (RSIF): 8.04
Volume: 07
Issue: 02
March-April 2026
Received: 11-01-2026
Accepted: 10-02-2026
Published: 20-03-2026
Page No: 283-288

Abstract
महाभारत में राजधर्म के अंतर्गत राजा के कर्तव्यों तथा राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसके अनुसार राजा का प्रमुख दायित्व प्रजा की रक्षा, न्याय की स्थापना और राज्य की उन्नति करना है। राज्य के सुचारु संचालन के लिए योग्य मन्त्रिमण्डल, सभा-समिति तथा न्याय व्यवस्था का संगठन आवश्यक माना गया है। राज्य की सुरक्षा के लिए संगठित सेना तथा कूटनीतिक कार्यों के लिए दूतों की नियुक्ति भी महत्वपूर्ण मानी गई है। इसके साथ ही राज्य की आर्थिक स्थिरता के लिए कोष का संग्रह और संरक्षण आवश्यक बताया गया है। इस प्रकार महाभारत में वर्णित राजधर्म धर्म, नीति, न्याय और लोककल्याण पर आधारित एक आदर्श शासन व्यवस्था का प्रतिपादन करता है।

DOI: https://doi.org/10.54660/.IJMRGE.2026.7.2.283-288

कूटशब्द: राजधर्म, मन्त्रिमण्डल, न्याय-व्यवस्था, सेना-संगठन, राजकोष।

सारांश
महाभारत केवल भारतीय साहित्य का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण वैश्विकसाहित्य का एक अद्वितीय और महान ग्रन्थ है। अपने विशाल आकार, विषय-वस्तु की व्यापकता तथा जनमानस में अत्यधिक लोकप्रियता के कारण यह विश्व साहित्य में विशेष स्थान रखता है। इस महाकाव्य में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित विविध विषयों का विस्तृत और गहन निरूपण मिलता है। इसी कारण इतिहासकारों ने इसे भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक मूल्यों का एक महत्वपूर्ण भंडार माना है। महाभारत के कथावाचक सौति ने भी इसे उत्तम ज्ञान से परिपूर्ण श्रेष्ठ इतिहास कहा है। आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में भी महाभारत विश्व के श्रेष्ठ और सुन्दरतम महाकाव्यों में से एक है।
पाश्चात्य विद्वान मैकडोनल के अनुसार महाभारत का यह स्वरूप ग्रीक महाकाव्यों इलियट और ओडेसी को मिलाकर भी उनसे लगभग आठ गुना बड़ा है। इस दृष्टि से महाभारत को संसार का सबसे विशाल महाकाव्य कहा जाता है। विश्व साहित्य के इतिहास में ऐसा कोई अन्य काव्य नहीं है जो आकार की विशालता में इसके समीप पहुँच सके।

उद्देश्य

- महाभारत में प्रतिपादित राजधर्म की संकल्पना का सम्यक् विश्लेषण करना।
- महाभारत में वर्णित राजा के कर्तव्यों एवं दायित्वों का निरूपण करना।
- राज्य की प्रशासनिक संरचना जैसे मन्त्रिमण्डल, सभा-समिति एवं न्याय-व्यवस्था, सेना-संगठन, दूत-व्यवस्था तथा सुरक्षा तंत्र का अध्ययन करना।
- राजकोष एवं आर्थिक व्यवस्था के महत्त्व का विश्लेषण करना।
- महाभारत में वर्णित राजधर्म की आधुनिक प्रशासनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।

शोध-प्रविधि -

इस शोधपत्र में मुख्यतः वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है। अध्ययन के लिए महाभारत के विभिन्न पर्वों, विशेषतः शान्ति पर्व और अनुशासन पर्व, का प्राथमिक स्रोत के रूप में उपयोग किया गया है। साथ ही मनुस्मृति, रामायण तथा अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का सहायक स्रोत के रूप में अवलम्बन किया गया है। संकलित सामग्री का तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण करते हुए राजधर्म के सिद्धान्तों तथा प्रशासनिक तत्त्वों का व्यवस्थित निरूपण किया गया है। इस प्रकार यह शोध ग्रन्थाधारित एवं सैद्धान्तिक पद्धति पर आधारित है, जिसमें पारम्परिक स्रोतों के आधार पर निष्कर्ष स्थापित किए गए हैं।

साहित्य पुनरावलोकन -

महाभारत के रचयिता के रूप में महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास को स्वीकार किया जाता है। उनकी माता का नाम सत्यवती था। परम्परा के अनुसार उनका जन्म यमुना नदी के एक द्वीप पर हुआ था, इसी कारण उन्हें द्वैपायन कहा गया।[1] उनके श्याम वर्ण के कारण वे कृष्ण मुनि के नाम से भी विख्यात हुए। वेदों का संकलन, व्यवस्था और प्रचार करने के कारण उन्हें वेदव्यास की उपाधि प्राप्त हुई।[2] भारतीय परम्परा में यह भी माना जाता है कि महर्षि व्यास ने अत्यन्त परिश्रम और तप के साथ लगभग तीन वर्षों में महाभारत की रचना की।[3]

महाभारत की विशालता और विषय-सम्पन्नता के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध उक्ति प्रचलित है कि जो महाभारत में नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। स्वयं महाभारत में भी इस ग्रन्थ की व्यापकता का उल्लेख मिलता है, जहाँ कहा गया है कि जो यहाँ वर्णित है वही अन्यत्र भी प्राप्त हो सकता है, परन्तु जो यहाँ नहीं है वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा।[4] यह कथन इस ग्रन्थ की विषय-विस्तारिता और ज्ञान-समृद्धि को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। महाभारत की यही व्यापकता उसके विशाल आकार को सार्थक बनाती है। भारतीय जीवन से सम्बन्धित धर्म, नीति, आचार, शिक्षा और व्यवहार के विविध आयामों का इसमें विस्तृत निरूपण मिलता है। महाभारत की मुख्य कथा के साथ-साथ उसमें संलग्न अनेक उपाख्यान भी जीवनोपयोगी शिक्षाओं के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। विद्वानों के लिए जिस प्रकार वेदों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है, उसी प्रकार सामान्य जनसमुदाय के लिए महाभारत का भी विशेष महत्त्व है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि जैसे वेद विद्वानों के लिए ज्ञान का भंडार हैं, वैसे ही महाभारत सामान्य जनता के लिए ज्ञान और जीवन-मार्गदर्शन का समृद्ध स्रोत है।

महाभारत के तीन रूपान्तर हुए। जय, भारत तथा महाभारत। महाभारत-संग्राम के बाद श्री वेदव्यास मुनि ने इस आख्यान का उपदेश अपने शिष्य वैशम्पायन को दिया तब इसका नाम जय था।[5] कुछ समय के पश्चात् वैशम्पायन ने अपने लिखे संवाद आदि जोड़कर नागयज्ञ के अवसर पर जन्मेजय को सुनाया। तब इसका नाम भारत प्रसिद्ध हुआ और इसके श्लोकों की संख्या 24000 हो गई।[6] अन्त में यह कथानक लोमहर्षण के पुत्र सौति उग्रश्रवा ने शौनक आदि ऋषियों को सुनाया जिसमें उसके पूछे प्रश्नों के उत्तर भी शामिल हुए। इस समय इसके श्लोकों की संख्या एक लाख हो गई और इसका नाम महाभारत के रूप में प्रसिद्ध हुआ।[7] महाभारत मे सौति का कथन दिया गया है- **एकं शतसहस्रं च मयोक्तं वै निवोधत।**[8] विद्वानों की साधारण धारणा है कि प्रचलित महाभारत में सौति के काल के बाद कोई नया परिवर्तन व परिवर्द्धन नहीं हुआ है।[9] महाभारत की मूल कथा कौरवों और पाण्डवों के युद्ध से संबंधित है। महाभारत के खण्डों को पर्व कहते हैं। महाभारत में अठारह पर्व हैं। 1. आदि 2. सभा 3. बैन 4. विराट 5. उद्योग 6. भीष्म 7. द्रौणं 8. कर्ण 9. शल्य 10. सौप्तिक 11 स्त्री 12. शांति 13. अनुशासन 14. अश्वमेध 15. आश्रमवासी 16. मौसल 17. महाप्रस्थानिक 18. स्वर्गारोहण।

राजा की आवश्यकता -

संस्कृत व्याकरण के अनुसार राजा शब्द की उत्पत्ति राजृ दीप्तौ धातु से मानी जाती है। इस धातु में उणादि प्रत्यय 'कनिन्' के योग से राजन् शब्द का निर्माण होता है, जिससे आगे चलकर राजा शब्द का प्रचलन हुआ। इस शब्द का आशय ऐसे व्यक्ति से है जो अपने गुण, तेज तथा प्रभाव के कारण समस्त प्रजा को आलोकित, प्रेरित और प्रभावित करने की क्षमता रखता हो। इस प्रकार राजा केवल शासन करने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि अपने गुणों और तेजस्विता से समाज का मार्गदर्शन करने वाला व्यक्तित्व माना गया है।

राजा की आवश्यकता समाज और राज्य व्यवस्था की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गयी है। बिना राजा के कोई भी राष्ट्र व्यवस्थित रूप से उन्नति नहीं कर सकता। जहाँ राजा या शासक नहीं होता, वहाँ अराजकता और अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। अतः समाज के कल्याण की इच्छा रखने वाले लोगों को चाहिए कि वे किसी योग्य, गुणसम्पन्न और धर्मनिष्ठ व्यक्ति को राजा के पद पर प्रतिष्ठित करें। इस विषय में मनुस्मृति में भी कहा गया है कि जब संसार में बलवान् और दुष्ट लोगों के कारण चारों ओर भय का वातावरण उत्पन्न हुआ, तब प्रजा की रक्षा और व्यवस्था की स्थापना के लिए ईश्वर ने राजा की व्यवस्था की।[10] महाभारत के शान्ति पर्व में भी राष्ट्र की रक्षा और उन्नति के लिए राजा की आवश्यकता का विस्तृत प्रतिपादन मिलता है। वहाँ भीष्म पितामह महाराज युधिष्ठिर को बताते हैं कि जिन देशों में राजा नहीं होता, वहाँ धर्म की भी स्थिरता नहीं रहती। ऐसी स्थिति में लोग परस्पर एक-दूसरे का

---

[1] महाभारत आदि पर्व अ.६३/८६
[2] तत्रैव १०४/१५
[3] महाभारत आदि पर्व अ. ६२/५२२
[4] यन्नभारते तन्नभारते। तत्रैव ६२/५३
[5] डॉ० सुमेधा विद्यालंकार - महाभारत में शान्ति पर्व का आलोचनात्मक अध्ययन पृ० ४
[6] तत्रैव।
[7] तत्रैव।
[8] श्रीमहाभारत आदिपर्व १.१०९ ।।
[9] तत्रैव।
[10] अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुतोभयात् ।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ।। मनुस्मृति अ. ७/३

शोषण करने लगते हैं और समाज में अराजकता फैल जाती है। इसलिए जहाँ अराजकता का वातावरण हो, वह राज्य निन्दनीय माना जाता है।[11] इसीलिए किसी भी राष्ट्र को अपनी रक्षा और व्यवस्था के लिए योग्य राजा का चयन अवश्य करना चाहिए। अराजकता की स्थिति में लोगों के धन, संपत्ति और स्त्रियों की सुरक्षा भी संभव नहीं रहती। उस अवस्था में दुष्ट और लोभी लोग दूसरों के धन का अपहरण करके प्रसन्न होते हैं, परन्तु अंततः वे स्वयं भी अन्य शक्तिशाली लोगों के द्वारा लूट लिए जाते हैं। इस प्रकार अराजक समाज में कोई भी व्यक्ति सुरक्षित नहीं रह सकता। एक व्यक्ति का धन दो लोग मिलकर छीन लेते हैं और उन दोनों का धन फिर अन्य लोग लूट लेते हैं। यहाँ तक कि जो व्यक्ति स्वतंत्र है, उसे भी दास बना लिया जाता है और स्त्रियों का बलपूर्वक अपहरण किया जाता है। इसलिए समाज की रक्षा के लिए देवताओं ने प्रजापालक राजाओं की व्यवस्था की।[12]

यदि पृथ्वी पर दण्डधारी राजा न हो, तो समाज की स्थिति उसी प्रकार हो जाती है जैसे जल में बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को निगल जाती हैं। उसी प्रकार शक्तिशाली व्यक्ति निर्बल लोगों का शोषण करने लगते हैं। प्राचीन परम्पराओं में भी यह उल्लेख मिलता है कि जब समाज में राजा का अभाव था, तब लोग परस्पर संघर्ष करते हुए नष्ट होने लगे थे। तब समाज के लोगों ने मिलकर यह नियम बनाया कि जो व्यक्ति कठोर वाणी बोलने वाला, अत्यधिक दण्ड देने वाला, परस्त्रीगामी या परधन का अपहरण करने वाला होगा, उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाएगा। इस प्रकार सामाजिक नियम बनाकर कुछ समय तक लोग शान्तिपूर्वक रहने लगे।[13] किन्तु कालान्तर में पुनः समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। तब दुःख से पीड़ित होकर सभी प्रजाजन ब्रह्मा के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि राजा के अभाव में उनका जीवन असुरक्षित हो गया है, इसलिए उन्हें ऐसा शासक प्रदान किया जाए जो शासन करने में समर्थ हो और उनका संरक्षण कर सके। तब ब्रह्मा ने मनु को राजा बनने की आज्ञा दी। प्रारम्भ में मनु ने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करने में संकोच व्यक्त किया, क्योंकि वे राज्य संचालन को अत्यन्त कठिन कार्य मानते थे और पापकर्म से भयभीत थे। तब प्रजा ने उन्हें आश्वासन दिया कि राज्य में होने वाले पापों का भार वे स्वयं वहन करेंगे तथा राजा के पालन-पोषण और राज्य संचालन के लिए आवश्यक कर भी प्रदान करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि वे अपने पशुओं, स्वर्ण और कृषि उपज का निश्चित अंश कर के रूप में देंगे तथा संकट के समय राजा का साथ देंगे।[14] प्रजा के इस आश्वासन और सहयोग से मनु ने अंततः राज्य का दायित्व स्वीकार किया। प्रजा के समर्थन से वे एक शक्तिशाली और तेजस्वी राजा के रूप में प्रतिष्ठित हुए। जिस प्रकार कुबेर यक्षों और राक्षसों की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार राजा का कर्तव्य भी प्रजा की रक्षा करना और उन्हें सुखी बनाना माना गया है। इस प्रकार महाभारत में राजा को समाज की व्यवस्था, सुरक्षा और समृद्धि का आधार माना गया है।

मन्त्रिमण्डल एवं सभा-समिति -

महाभारत के शान्ति पर्व में राज्य-व्यवस्था के सुसंगठित संचालन के लिए मन्त्रिमण्डल की महत्ता का विस्तृत वर्णन मिलता है। पितामह भीष्म, महाराज युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं कि राजा को अपने राज्य के सुचारु संचालन हेतु ऐसा मन्त्रिमण्डल गठित करना चाहिए जिसमें समाज के विभिन्न वर्गों का समुचित प्रतिनिधित्व हो। महाभारत के अनुसार मन्त्रिमण्डल की कुल संख्या सैंतीस निर्धारित की गई है। इन सैंतीस मन्त्रियों में विभिन्न वर्णों और वर्गों के योग्य व्यक्तियों को सम्मिलित करने का निर्देश दिया गया है। इसमें वेदविद्या के ज्ञाता, निर्भीक, शुद्ध आचरण वाले तथा स्नातक चार ब्राह्मण, शारीरिक रूप से बलवान और शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धन-धान्य से सम्पन्न इक्कीस वैश्य, तथा पवित्र आचार-विचार वाले, विनयशील तीन शूद्र सम्मिलित होने चाहिए। इसके अतिरिक्त आठों गुणों से युक्त तथा पुराणविद्या में पारंगत एक सूत को भी मन्त्रिमण्डल में स्थान दिया जाना आवश्यक बताया गया है। महाभारतकार ने विशेष रूप से सूत मन्त्री की योग्यता पर अधिक प्रकाश डाला है। उसके विषय में कहा गया है कि उसकी आयु लगभग पचास वर्ष के आसपास होनी चाहिए। वह निर्भीक, दोष-दृष्टि से रहित, श्रुति और स्मृति का ज्ञाता, विनयशील तथा समदर्शी होना चाहिए। साथ ही वह वादी-प्रतिवादी के विवादों का न्यायपूर्ण समाधान करने में समर्थ हो तथा लोभ से रहित रहते हुए सात प्रकार के दुर्व्यसनों से दूर रहने वाला हो। इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही राज्य के प्रशासन में उचित परामर्श देने में समर्थ माना गया है।[15]

महाभारत में मन्त्रणा की गोपनीयता को भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। राज्य की सुरक्षा और समृद्धि के लिए यह आवश्यक बताया गया है कि राजकीय नीतियों और निर्णयों से सम्बन्धित विचार-विमर्श गोपनीय रहे। सम्भवतः इसी कारण यह विचार किया गया कि सैंतीस सदस्यों वाले विस्तृत मन्त्रिमण्डल में गोपनीयता बनाए रखना कठिन हो सकता है। इसलिए शान्ति पर्व में यह निर्देश भी दिया गया है कि राजा राज्य के महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श मुख्यतः आठ

---

[11] अराजकेषु राष्ट्रेषु धर्मो न व्यवतिष्ठते !
परस्परं च खादन्ति सर्वथा धिगराजकम् !! महाभारत शान्ति पर्व अ. ६७/३

[12] तस्माद् राजैव कर्तव्यः सतत् भूतिमिच्छता ।
न धनार्थो न दारार्थस्तेषां येषामराजकम् !!
प्रीयते हि हरन् पापः परवित्तभराजके !
यदास्य उद्वरन्त्यन्ये तदा राजानमिच्छति !!
पापा ह्यपि तदा क्षेमं न लभन्ते कदाचन !
एकस्य हि द्वौ हरतो द्वयोश्च बहवोडपरे !!
अदासः क्रियते दासो ह्रियन्ते च बलात् स्त्रिय !
एतस्मात् कारणाद् देवाः प्रजापालन प्रचक्रिरे !! तत्रैव ६७/१२-१५

[13] राजा चेन्न भवेल्लो के पृथिव्यां दण्डधारकाः ।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन दुर्बलं बलवत्तराः !!
अराजकाः प्रजाः पूर्व विनेशुरिति नः श्रुतम् !
परस्परं भक्षयन्तो मत्स्या इव जले कृशान् !!
समेत्य तास्ततश्चक्रुः समयानिति न श्रुतम्।
वाक्शूरो दण्डपुरूषो यश्च स्यात् पारजायिकः !!
यः परस्वमथादद्यात् त्याज्या नरस्तादृशा इति !
विश्वासार्थ च सर्वेषां वर्णानामविशेषतः !
तातस्तथा समये कृत्वा समयेनावतस्थिरे !! तत्रैव ६७/१६-१९

[14] तमब्रुवन प्रजा मा मैः कर्तृनेनो गमिष्यति ।
पशूनामधिपञ्चाशद्धिरण्यस्य तथैव च !!
धान्यस्य दशमं भागं दाध्यामः कोशवर्धनम् ।
कन्यां शुल्के चारूरूपां विवाहेषूद्यतासु च !! तत्रैव ६७/२३-२४

[15] चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान स्नातकाञ्शुचीन्।
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ बलिनः शस्त्र पाणिनः ।।
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणि पूर्वके ।।
वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नानेक विंशति संख्यया।
अष्टभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा।
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकम् ।।
श्रुति स्मृति समायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्।
कार्यविवदमानानां शक्तमर्थेष्व लोलुपम् ।।
वर्जितं चैव व्यसनैः सुधारैः सप्तभिर्भूशम्। तत्रैव. ८५/७-१०.५

मन्त्रियों के साथ करे, जिससे मन्त्रणा की गोपनीयता और निर्णय की प्रभावशीलता दोनों बनी रह सके।[16] मन्त्रिमण्डल की संरचना परिस्थितियों और राज्य की प्रशासनिक जरूरतों के अनुसार निर्धारित की जाती थी। मन्त्रियों की संख्या के सम्बन्ध में मनुस्मृति में यह उल्लेख मिलता है कि राजा को सात अथवा आठ योग्य मन्त्रियों को अपने पास रखना चाहिए। ये मन्त्री धर्मनिष्ठ, बुद्धिमान् और राज्य के हित को समझने वाले होने चाहिए, जिससे वे राजा को उचित परामर्श देकर शासन-कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने में सहायक बन सकें।[17] इसी प्रकार रामायण में भी मन्त्रियों की संख्या का उल्लेख मिलता है। वहाँ वर्णित है कि महाराज दशरथ के मन्त्रिमण्डल में आठ मन्त्री थे। ये सभी मन्त्री अत्यन्त यशस्वी, ईमानदार तथा सदैव राजकार्य में तत्पर रहने वाले थे। वे निष्ठा और कर्तव्यपरायणता के साथ राज्य के प्रशासनिक कार्यों में राजा की सहायता करते थे।[18]

मन्त्रियों की नियुक्ति -

राज्यमंत्रियों के चयन के लिए महाभारत में अनेक आवश्यक गुणों का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार वही व्यक्ति प्रधान मन्त्री बनने के योग्य माना जाता है जो कीर्ति और मर्यादा को महत्व देता हो, अपने आचरण में संयम और संतुलन बनाए रखता हो तथा सामर्थ्यवान व्यक्तियों से अनावश्यक द्वेष या विरोध न करता हो। साथ ही जो व्यक्ति कामना, भय, लोभ अथवा क्रोध के कारण भी धर्म का परित्याग न करे तथा कार्यकुशलता और परिस्थितियों के अनुरूप संवाद करने की क्षमता रखता हो, वही राज्य के लिए उपयुक्त प्रधान मन्त्री माना जाता है।[19]

इसके अतिरिक्त मन्त्रिपद के लिए ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए जो कुलीन, शीलसम्पन्न, सहनशील तथा आत्मप्रशंसा से दूर रहने वाले हों। वे शूरवीर, विद्वान तथा कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेकपूर्ण निर्णय करने में समर्थ होने चाहिए। ऐसे गुणों से युक्त व्यक्ति ही राज्य के विभिन्न कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न करने में सक्षम होते हैं। राजा का यह भी कर्तव्य माना गया है कि वह अपने मन्त्रियों का आदरपूर्वक सत्कार करे और उन्हें सुख-सुविधाएँ प्रदान करे, क्योंकि सम्मान और विश्वास प्राप्त होने पर मन्त्री राज्य के कार्यों में निष्ठापूर्वक सहयोग करते हैं और राजा के श्रेष्ठ सहायक सिद्ध होते हैं।[20]

सभा एवं सभा के प्रकार -

राज्य-प्रशासन का कार्य अत्यन्त व्यापक और जटिल माना गया है। जिस प्रकार एक साधारण कार्य को भी अकेला मनुष्य सुचारु रूप से सम्पन्न करने में कठिनाई अनुभव करता है, उसी प्रकार विशाल राज्य का संचालन केवल राजा के द्वारा सम्भव नहीं होता। इसलिए प्राचीन भारतीय राज्यव्यवस्था में राजा की सहायता के लिए विभिन्न प्रकार की सभाओं और परिषदों की व्यवस्था की गई थी। स्मृतिशास्त्रों में राज्य संचालन को व्यवस्थित बनाने के लिए राजा को अनेक प्रकार के निर्देश दिए गए हैं। मनुस्मृति के अनुसार राजा को राज्य के सुचारु संचालन के लिए मुख्यतः तीन प्रकार की सभाओं का गठन करना चाहिए –

1. **राजसभा**
2. **ब्रह्मसभा अथवा न्यायसभा**
3. **धर्मनिर्णय सभा**

इन तीनों सभाओं के कार्य भी पृथक-पृथक निर्धारित किए गए थे।[21] राजसभा का कार्य मुख्यतः शासन और प्रशासन से संबंधित विषयों पर विचार करना था। ब्रह्मसभा अथवा न्यायसभा न्यायिक मामलों के निपटारे के लिए गठित की जाती थी, जबकि धर्मनिर्णय सभा का उद्देश्य धर्म और आचार से संबंधित जटिल प्रश्नों का निर्णय करना था।

महाभारत में 'सभा' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है एक ओर यह सभा या परिषद् के रूप में प्रयुक्त हुआ है, तो दूसरी ओर सभा-भवन के अर्थ में भी इसका उपयोग किया गया है। सभापर्व में नारद मुनि धर्मराज युधिष्ठिर की सभा का वर्णन करते हुए उसे अद्भुत और अदृष्टपूर्व बताते हैं तथा उसके संदर्भ में अनेक दिव्य देवसभाओं का भी उल्लेख करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में सभा राज्य-प्रशासन की एक महत्वपूर्ण संस्था थी, जिसका उद्देश्य शासन व्यवस्था को सुव्यवस्थित और प्रभावी बनाना था।[22]

न्याय एवं दण्ड व्यवस्था -

प्राचीन भारतीय राज्य-व्यवस्था में न्याय-प्रणाली का सर्वोच्च अधिकारी राजा को माना गया है। राजा मुख्य न्यायाधीश के रूप में कार्य करता था और प्रजा के विवादों को सुनने तथा उनका निर्णय करने का अधिकार उसी के पास होता था। साथ ही, वह आवश्यकता के अनुसार अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भी करता था, जिससे न्याय-व्यवस्था सुचारु रूप से संचालित हो सके। मनुस्मृति के अनुसार न्याय करने की इच्छा रखने वाला राजा न्यायशास्त्र के ज्ञाता विद्वानों, विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों, परामर्शदाताओं और न्यायमन्त्रियों के साथ न्यायालय में प्रवेश करे। वहाँ विनीत वेशभूषा धारण कर, उपयुक्त स्थान पर बैठकर या खड़े होकर, संकेतों के माध्यम से तथा विचारपूर्वक प्रजाजनों के विवादों को सुने और उनका न्यायसंगत निर्णय करे।[23] यदि किसी विशेष कारण अथवा अत्यधिक कार्यभार के कारण राजा स्वयं सभी विवादों का निरीक्षण और निर्णय करने में असमर्थ हो, तो उसे धर्म और न्यायशास्त्र के ज्ञाता विद्वान को न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करना चाहिए। ऐसा नियुक्त न्यायाधीश तीन अन्य न्यायसभा के सदस्यों के साथ न्यायालय में

---

[16] अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत् ।। तत्रैव ८५/११

[17] सचिवान्सप्तचाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्। मनुस्मृति अ. ७/५४

[18] अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः।
शुचयश्चानुरक्ताश्च. राजकृत्येषु नित्यशः ।। वाल्मीकि - रामायण बालकाण्ड ७/२

[19] कीर्तिप्रधानो यस्तु स्याद् यश्चस्यात् समयेस्थितः ।
समर्थान् यश्च न द्वेष्टि नानर्थान् कुरुते च यः ।।
यो न कामाद् भयाल्लोभात् क्रोधात् वा धर्ममुत्सृजेत् ।
दक्षः पर्याप्तवचनः स ते स्यात् प्रत्यनन्तरः ।।
कुलीनः शीलसम्पन्नस्तितिक्षुर विकत्थनः ।
शूरश्चार्यश्च विद्वांश्च प्रतिपत्ति विशारदः ।।
एतेह्यमात्याः कर्तव्याः सर्वकर्मस्ववस्थिताः।
पूजिताः संविभक्ताश्च सुसहायाः स्वनुष्ठिताः । महाभारत शान्तिपर्व अ. ८०/२६-२९

[20] कुलीनाशीलसम्पन्नानिंगितज्ञाननिष्ठुरान् ।
देशकालविधानज्ञान् भर्तृकार्य हेतैषिणः ।।
नित्यमर्थेषु सर्वेषु राजा कुर्वीत मन्त्रिणः।
सम्बन्धि पुरुषैराप्तैरभिजातैः स्वदेशजैः।
अहार्यैर्व्यभीचारैः सर्वशः सुपरीक्षितैः ।।
यौनाः श्रोतास्तथा मौलास्तथैवारयनहंकृताः।
कर्त्तव्या भूतिकामेन पुरुषेण बुभूषता ।।
तस्मात् सर्वैगुणैरेतैरूपपन्नाः सुपूजिताः ।
मन्त्रिणः प्रकृतिज्ञाः स्युस्त्र्यवरा महदीप्सवः ।। तत्रैव ८३/८-१९-२०-४७

[21] मनुस्मृति अध्याय ७,८,१२

[22] महाभारत सभापर्व ६-१२

[23] मनुस्मृति अ. ८/१,२

बैठकर अथवा खड़े होकर प्रजा के विवादों की सम्यक् जाँच कर उनका निर्णय करता था।[24]

महाभारत में भी न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्देश प्राप्त होते हैं। धृतराष्ट्र, महाराज युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं कि न्याय के कार्य के लिए सदैव ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए जो विश्वसनीय, संतोषी और राज्य के हितैषी हों। साथ ही, गुप्तचरों के माध्यम से उनके कार्यों पर सतत दृष्टि रखना भी आवश्यक है, जिससे न्याय-व्यवस्था में किसी प्रकार की अनियमितता न हो। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक बताया गया है कि न्यायाधिकारी अपराधियों के अपराध की मात्रा को भलीभाँति समझकर ही उचित दण्ड प्रदान करें। जो न्यायाधिकारी घूस लेने के अभ्यस्त हों, परस्त्रीगमन में लिप्त हों, अत्यधिक कठोर दण्ड देने के पक्षपाती हों, झूठा निर्णय देते हों, कटुवचन बोलने वाले, लोभी, परधन का अपहरण करने वाले अथवा समाज में कलंक फैलाने वाले हों, ऐसे न्यायाधिकारियों को अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सुवर्णदण्ड या प्राणदण्ड तक दिया जाना चाहिए।[25]

सेना और सुरक्षा -

प्राचीन भारतीय राज्य-व्यवस्था में सेना राज्य की शक्ति और सुरक्षा का प्रमुख आधार मानी जाती थी। प्रत्येक राजा के पास अपनी संगठित सेना होती थी, जिसके माध्यम से वह अपने राज्य की रक्षा करता था तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता था। सेना में विभिन्न प्रकार की सैन्य इकाइयाँ सम्मिलित होती थीं, जिनमें मुख्य रूप से पैदल सैनिक, घुड़सवार, हाथी, रथ तथा अन्य युद्धोपयोगी साधन शामिल थे। इन सबके समन्वय से राज्य की सैन्य शक्ति का निर्माण होता था।

महाभारत के उद्योग पर्व में कुरुक्षेत्र युद्ध के समय दोनों पक्षों की सेनाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। उसके अनुसार कौरवों की सेना में ग्यारह अक्षौहिणी तथा पाण्डवों की सेना में सात अक्षौहिणी सैन्यदल सम्मिलित थे।[26] उद्योग पर्व में सेना की संरचना और उसकी विभिन्न इकाइयों की संख्या का भी उल्लेख मिलता है। एक स्थान पर एक रथ के साथ दस हाथी, सौ घोड़े और एक हजार सैनिकों की गणना दी गई है, जबकि दूसरे स्थान पर एक रथ के साथ पचास हाथी, आठ हजार घोड़े तथा पैंतीस हजार सैनिकों का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सेना की संरचना और उसके विभिन्न विभागों की संख्या परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती थी।

महाभारत में सेना की संगठनात्मक संरचना के अनेक स्तरों का भी उल्लेख मिलता है। वहाँ सेना की इकाइयों के रूप में सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू तथा अक्षौहिणी जैसे पदों का प्रयोग किया गया है, जिन्हें कई स्थानों पर परस्पर पर्यायवाची रूप में भी माना गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय सेना के अनेक विभाग और संगठनात्मक स्तर होते थे। सामान्यतः कौरवों की सेना में ग्यारह और पाण्डवों की सेना में सात प्रमुख सैन्य विभाग थे, जिनकी संरचना और सैनिक संख्या में भिन्नता सम्भव थी।

महाभारत में युद्ध के समय सेनाओं को विभिन्न व्यूहों में व्यवस्थित करने की परम्परा का भी उल्लेख मिलता है। इन व्यूहों का निर्माण युद्ध की रणनीति और परिस्थिति के अनुसार किया जाता था। प्रमुख व्यूहों में सर्वतोमुख, सूचिमुख (कज्ज), महाव्यूह, क्रौंच, गरुड़, अर्धचन्द्र, मकर, श्येन, मण्डल, श्रृंगाटक, सर्वतोभद्र, चक्र तथा शकट आदि का उल्लेख मिलता है।

इन व्यूहों के भी अनेक भाग होते थे, जैसे- तुण्ड, मुख, नेत्र, पक्ष, पृष्ठ तथा सेना-जघन आदि। प्रत्येक भाग में एक या अधिक प्रमुख योद्धाओं को उनके सैनिक दलों सहित नियुक्त किया जाता था। उदाहरणतः वज्रव्यूह के विषय में कहा गया है कि इस प्रकार की संरचना में अपेक्षाकृत छोटी सेना भी बड़ी सेना को पराजित करने में समर्थ हो सकती थी। इसी प्रकार मण्डल व्यूह का प्रयोग महाभारत के युद्ध के सातवें दिन पाण्डवों द्वारा किया गया था, जिसमें एक हाथी के साथ सात घोड़े, प्रत्येक घोड़े के साथ सात धनुर्धर तथा प्रत्येक धनुर्धर के साथ सात सहायक सैनिक नियुक्त किए गए थे।[27]

दूत एवं गुप्तचर -

प्राचीन भारतीय राज्य-व्यवस्था में राजा के सहायकों में **दूत** का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। राज्य की सुव्यवस्था, सुरक्षा तथा अन्य राज्यों के साथ संबंधों को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए दूतों की नियुक्ति आवश्यक समझी जाती थी। शान्तिकाल में राजा अपने राज्य की शांति, समन्वय और राजनयिक संबंधों को बनाए रखने के लिए अन्य राज्यों में योग्य दूतों को नियुक्त करता था। ऐसे दूत कार्यकुशल, कुलीन तथा देश-काल की परिस्थितियों के ज्ञाता होते थे। वे राज्य के हितों की रक्षा करते हुए अन्य राज्यों के साथ संवाद और समन्वय स्थापित करने का कार्य करते थे। इसी प्रकार युद्धकाल में भी दूत की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती थी। युद्ध की स्थिति में राजा ऐसे दूत को शत्रु राज्य में भेजता था जो अपनी बुद्धिमत्ता, चातुर्य और कूटनीतिक क्षमता के माध्यम से शत्रुपक्ष में फूट उत्पन्न कर सके तथा अपने स्वामी के सामर्थ्य और पराक्रम का प्रभाव प्रदर्शित कर शत्रु को भयभीत कर सके।

महाभारत में दूत के आवश्यक गुणों का भी उल्लेख मिलता है। विदुर, महाराज धृतराष्ट्र को दूत के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि दूत ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो अहंकार रहित, निर्भीक, शीघ्र कार्य सम्पन्न करने वाला, दयालु, शुद्ध हृदय वाला, दूसरों के बहकावे में न आने वाला, निरोग तथा उदार वचन बोलने वाला हो। इन गुणों से युक्त व्यक्ति ही दूत पद के योग्य माना जाता है।[28] इसी प्रकार भीष्म पितामह, महाराज युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं कि राजा का दूत कुलीन, शीलवान, वाचाल, चतुर तथा प्रिय वचन बोलने वाला होना चाहिए। साथ ही उसमें संदेश को यथावत् प्रस्तुत करने की क्षमता तथा उत्तम स्मरणशक्ति भी होनी चाहिए। ऐसे गुणों से सम्पन्न दूत ही राजा के संदेश को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर राज्य के हितों की रक्षा करने में समर्थ होता है।[29]

---

[24] मुनस्मृति अ. ८/९,१०

[25] व्यवहारश्च ते राजन् नित्यमाप्तेरधिष्ठितः ।।
योज्यस्तुष्टेडिंते राजन् नित्यं चारेरनुष्ठितः।
परिमाणं विदित्वा च दण्डं दण्ड्येषु भारत।।
प्रणयेयुर्यथा न्याय पुरुषास्ते युधिष्ठिर।
आदानरुचयश्च्य परदाराभिनर्शिनः ।।
उग्रदण्डप्रधानाश्च मिथ्या व्याडारिणस्तथा।
आक्रोष्टारश्च लुब्धाश्च हतारः साहसांप्रयाः ।।
सभाविहारभेत्तारों वर्णानां च प्रदूषकाः ।।
हिरण्यदण्ड्या वध्याश्च कर्तव्य देशकालतः ।। महाभारत आश्रमवासिक पर्व अ. ५/२८-३१

[26] महाभारत उद्योग पर्व अ. १५५/२७

[27] महाभारत भीष्मपर्व अ. ८२/१४-१५

[28] अस्तब्धमक्लीबन दीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुधारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ।। महाभारत उद्योग पर्व अ. ३७/२७

[29] कुलीनः शीलसन्पन्नो बाग्मीदक्षः प्रियंवदः ।
यथोक्तवादी स्मृतिमान दूतः स्यात् सप्तभिर्गुणैः।। महाभारत शान्तिपर्व अ. ८५/२८

अर्थव्यवस्था -

प्राचीन भारतीय राज्य-व्यवस्था में धन अथवा कोष को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। राज्य के सुचारु संचालन, प्रशासनिक व्यवस्था तथा विभिन्न लोककल्याणकारी कार्यों के लिए धन का होना अनिवार्य माना गया है। राज्य के विकास, समृद्धि और स्थिरता का आधार भी कोष को ही माना गया है, क्योंकि राजकीय योजनाओं का क्रियान्वयन, कर्मचारियों का वेतन, शिक्षा का प्रसार तथा अन्य आवश्यक कार्य धन के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं। अतः राजा के लिए यह आवश्यक माना गया कि वह राज्य के कोष को सुदृढ़ बनाए रखे। प्राचीन ग्रन्थों में कोष को राज्य की आधारशिला के रूप में स्वीकार किया गया है। कहा गया है कि कोष ही राजाओं की जड़ है, क्योंकि कोष के अभाव में राज्य के अधिकांश कार्य अधूरे रह जाते हैं और प्रशासनिक व्यवस्था भी प्रभावी रूप से संचालित नहीं हो पाती। इसीलिए राजा को चाहिए कि वह अधिक से अधिक धन का संग्रह कर राज्य के कोष को सुदृढ़ बनाए।

महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म पितामह, महाराज युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं कि राजा को अपने तथा शत्रु के राज्य से प्राप्त धन द्वारा अपने खजाने को समृद्ध करना चाहिए। कोष की समृद्धि से ही धर्म की वृद्धि होती है तथा राज्य की शक्ति और स्थिरता भी सुदृढ़ होती है। भीष्म के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि वह कोष का संग्रह करे, उसका सावधानीपूर्वक संरक्षण करे और निरन्तर उसकी वृद्धि के लिए प्रयास करता रहे। यही राजधर्म का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि अत्यधिक कठोरता या पूर्णतः उदारता दोनों ही स्थितियाँ कोष-संग्रह के लिए उपयुक्त नहीं हैं। जो व्यक्ति अत्यन्त कठोर या अत्यन्त उदार होता है, वह कोष का उचित संग्रह नहीं कर सकता। इसलिए राजा को मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए न्यायसंगत और संतुलित नीति द्वारा कोष की वृद्धि करनी चाहिए।[30]

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय राज्य-व्यवस्था अत्यन्त संगठित, सुव्यवस्थित और सिद्धान्तनिष्ठ थी। महाभारत में वर्णित राजधर्म के अनुसार राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होते हुए भी शासन कार्यों का संचालन विभिन्न संस्थाओं और अधिकारियों के सहयोग से करता था। राज्य-प्रशासन में मन्त्रिमण्डल का विशेष महत्व था, जिसमें योग्य, विद्वान तथा सदाचारी व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता था। सभा और समिति जैसी संस्थाएँ शासन व्यवस्था को संतुलित और प्रभावी बनाने में सहायक थीं। न्याय व्यवस्था में राजा सर्वोच्च न्यायाधीश माना गया, किन्तु निष्पक्ष न्याय के लिए योग्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भी की जाती थी। राज्य की सुरक्षा और शक्ति के लिए संगठित सेना तथा विभिन्न युद्ध-व्यूहों की व्यवस्था का विशेष महत्व था। इसके अतिरिक्त कूटनीतिक कार्यों के लिए योग्य दूतों की नियुक्ति भी आवश्यक मानी गई है। साथ ही राज्य की आर्थिक स्थिरता के लिए सुदृढ़ कोष को अनिवार्य माना गया है। इस प्रकार महाभारत में वर्णित राजधर्म धर्म, न्याय, नीति और लोककल्याण पर आधारित आदर्श शासन-व्यवस्था का स्वरूप प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची

1. व्यास - (2012)। महाभारत (सम्पा०: गीता प्रेस संस्करण)। गोरखपुर: गीता प्रेस।
2. मनु - (2016)। मनुस्मृति। गोरखपुर: गीता प्रेस।
3. वाल्मीकि - (2014)। वाल्मीकि रामायण। गोरखपुर: गीता प्रेस।
4. उपाध्याय, बलदेव - (2017)। संस्कृत साहित्य का इतिहास। वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
5. Vaidya, C. V. - (1907)। The Mahabharata: A Criticism। Bombay: A. J. Combridge & Co.
6. Macdonell, A. A. - (1900)। A History of Sanskrit Literature। London: William Heinemann।
7. विद्यालंकार, सुमेधा - (2010)। महाभारत में शान्ति पर्व का आलोचनात्मक अध्ययन। नई दिल्ली: डी.के. पब्लिशर्स।

[30] स्वराजष्टात् परराष्ट्राश्च कोशं संजनयेन्नृपः !
कोशाब्द्धि धर्मः कौन्तम राज्यमूलं च वर्धते !!
तस्माद् संजनयेत् कोशं सत्कृत्य परिपालयेत् ।
परिपाल्यानुतनुयादेष धर्मः सनातनः !!
न कोशः शुद्धशौचेन न नृशंसेन जातुचित ।
मध्यमं पदमास्थाय कोश संग्रहणं चरेत !! तत्रैव १३३/१,२,३